जनसत्ता

आतंक के विरुद्ध

पिछले कुछ सालों के दौरान यह साफ हो चुका है कि वैश्विक स्तर पर आर्थिक गतिविधियों के सहज संचालन और अलग-अलग देशों के विकास में आतंकवाद ने कैसी बाधाएं खड़ी की हैं। इसलिए आर्थिक सहयोग के लिए होने वाले तमाम अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अगर आतंकवाद का सामना करने या उस पर काबू पाने को लेकर भी बातचीत केंद्र में होती है तो यह स्वाभाविक ही है। ब्राजील के ब्रासीलिया में गुरुवार को ग्यारहवें ब्रिक्स सम्मेलन में इस संगठन में शामिल देशों के बीच आपस में आर्थिक सहयोग के समांतर आतंकवाद भी चर्चा का विषय का बना है, तो इसकी वजह यही है। गौरतलब है कि ब्रिक्स सम्मेलन के पूर्ण सत्र को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि आतंकवाद से दुनिया की अर्थव्यवस्था को अब तक एक हजार अरब डॉलर का नुकसान हो चुका है। यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि विकास, शांति और समृद्धि के लिहाज से इतनी भारी रकम का क्या और कैसे इस्तेमाल हो सकता था, लेकिन आतंकी गतिविधियों की वजह से भारी नुकसान या फिर उसका सामना करने में खर्च की वजह से इतनी बड़ी राशि बर्बाद हो गई।

आतंकवाद केवल भारत नहीं, अलग-अलग पैमानों पर दुनिया के कई देशों की समूची राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। सच यह है कि विकास और शांति के लिए आतंकवाद आज सबसे बड़े खतरे के रूप में सामने है। इसके जगजाहिर होने के बावजूद दुनिया के कुछ देश न केवल इस समस्या की अनदेखी करते हैं, बल्कि परोक्ष रूप से आतंकी संगठनों के अपनी सीमा के भीतर से गतिविधियां संचालित करने को लेकर आंखें मूंदे भी रहते हैं। हालांकि भारत इस मसले पर अक्सर दुनिया को ध्यान दिलाता रहा है कि अगर इस प्रवृत्ति पर रोक नहीं लगाई गई तो आतंकी समूह वैश्विक अर्थव्यवस्था को बड़ा नुकसान पहुंचाएंगे। भारत को इस दिशा में एक बड़ी कामयाबी तब मिली थी जब चीन में हुए नौवें ब्रिक्स सम्मेलन में जारी घोषणा-पत्र में पहली बार पाकिस्तान की जमीन से आतंक फैलाने वाले संगठनों लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद, तहरीक-ए-तालिबान, हक्कानी नेटवर्क आदि का नाम सार्वजनिक रूप से शामिल करते हुए इनकी आलोचना की गई थी। तब ब्रिक्स देशों ने आतंकवाद को शह देने वाले देशों को तीखी फटकार भी लगाई थी।

यानी ब्रिक्स देशों के ताजा सम्मेलन में एक हद तक सही, लेकिन भारत को आतंकवाद के मसले पर दुनिया का ध्यान खींचने में फिर अहम कामयाबी मिली है। खासतौर पर रूस के राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन के साथ द्विपक्षीय बैठक में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने रणनीतिक साझेदारी को और मजबूत करने पर चर्चा की। इसका मुख्य उद्देश्य आतंकवाद निरोधक सहयोग के लिए एक व्यापक तंत्र बनाना है। रूस 2016 में हुए ब्रिक्स सम्मेलन में भी आतंकवाद के मसले पर भारत का साथ दे चुका है। इस बार दोनों नेताओं के बीच यह शिखर सम्मेलन इस लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण रहा कि भारत-रूस संबंधों के साथ-साथ इसमें व्यापार, सुरक्षा और संस्कृति जैसे क्षेत्रों में व्यापक सहयोग पर भी बातचीत आगे बढ़ी। इस समूची कवायद में न केवल भारत, बल्कि विश्व स्तर पर अर्थव्यवस्था के बाधक तत्त्वों की पहचान और उसकी चुनौतियों का सामना करने की ठोस योजनाओं पर बातचीत आगे बढ़ी और यह अंतरराष्ट्रीय शांति और विकास के लिहाज से महत्त्वपूर्ण है। यों भी ब्रिक्स देशों के आर्थिक सहयोग की ओर बढ़ते कदमों में आतंकवाद जैसी समस्याओं से निपटने के लिए ठोस कार्यक्रम को शामिल करना वक्त की जरूरत है।

घोटाले का घुन

घूस और अन्य गैरकानूनी तरीके से धन कमाने को लेकर पुलिस महकमा सबसे अधिक बदनाम रहा है। मगर अपने ही कर्मियों के वेतन में घोटाला करने की उसकी नई करतूत सामने आई है। गौतम बुद्ध नगर जिले में मिली शिकायत पर जांच की गई तो पता चला कि यहां के थानों में पुलिस अधिकारी फर्जी तरीके से हस्ताक्षर करके होमगार्डों की तैनाती दिखाते और उनके हिस्से का वेतन अपनी जेब के हवाले करते रहे। वे होमगार्डों की तैनाती कागज पर तो दिखाते थे, पर वास्तव में उनकी तैनाती नहीं की जाती थी। गौरतलब है कि उत्तर प्रदेश में पुलिस सुरक्षा संबंधी अनेक कार्यों में होमगार्डों की मदद लेती है। उन्हें तैनाती के आधार पर वेतन का भुगतान किया जाता है। यानी जितने दिन उनकी तैनाती होती है, उतने ही दिन का वेतन मिलता है। उनकी तैनाती संबंधित थानाध्यक्ष करते हैं। गौतम बुद्ध नगर जिले में फर्जी तैनाती दिखा कर राजकोष से पैसा निकाला जाता रहा। फिलहाल होमगार्ड महानिदेशक ने इस मामले की जांच के लिए एक समिति गठित कर दी है। देखना है, राज्य के दूसरे जिलों में भी ऐसी अनियमितताओं का पर्दाफाश हो पाता है या नहीं।

कुछ दिन पहले उत्तर प्रदेश सरकार के पच्चीस हजार होमगार्डों की छंटनी के फैसले को लेकर काफी विरोध हुआ था। बहुत सारे युवा, जिन्हें कहीं और रोजगार नहीं मिल पाता, होमगार्ड की नौकरी मिलने से गुजारे भर की कमाई का सहारा पा जाते हैं। इसलिए उनकी छंटनी पर विरोध स्वाभाविक था। मगर लोभी पुलिस अधिकारी इस तरह उनके हिस्से का धन हड़पते रहे, यह कम अमानवीय व्यवहार नहीं है। दरअसल, घोटालेबाजी एक प्रवृत्ति है। ऐसे लोगों को सिर्फ अपना मुनाफा दिखता है, किसी की मजबूरी या किसी तरह की नैतिकता उनके लिए कोई मायने नहीं रखती। इसी तरह का घोटाला कुछ साल पहले दिल्ली नगर निगम में भी उजागर हुआ था, जिसमें निगम के अधिकारी सफाई कर्मियों की फर्जी तैनाती दिखा कर उनके हिस्से का पैसा हड़पते रहे। वहां फर्जी तौर पर बहुत सारे नियमित कर्मी भर्ती कर लिए गए थे, जो कागजों में तो दर्ज थे, मगर वास्तव में काम पर तैनात नहीं थे। उनका वेतन अधिकारियों की जेब में जाता था। इस प्रवृत्ति पर काबू पाया गया। जिन महकमों या योजनाओं में इस तरह दिहाड़ी पर या अनियमित रूप से कर्मी नियुक्त किए जाते हैं, वहां ऐसे घोटालों की गुंजाइश अधिक होती है। उत्तर प्रदेश में ऐसे घोटालों की फेहरिस्त कुछ लंबी है। कुछ साल पहले स्वास्थ्य बीमा में व्यापक घोटाला और हाल में बिजली विभाग के कर्मचारियों की भविष्य निधि में घोटाला भी कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

सरकारी धन की लूट में अक्सर कड़ियां बहुत दूर तक जुड़ी होती हैं। इसलिए यह मामला केवल गौतम बुद्ध नगर जिले तक सीमित होगा, कहना मुश्किल है। अगर निष्पक्ष जांच हो तो इसकी कड़ियां दूसरे जिलों से भी जुड़ी मिल सकती हैं। इसमें वास्तव में कितनी रकम घोटाले की भेंट चढ़ी है, उसका भी पता लग सकेगा। कुछ अधिकारियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज तो की गई है, पर इसमें कहां तक न्याय हो पाएगा, यह भी जांच की निष्पक्षता पर निर्भर करता है। मगर उत्तर प्रदेश में जिस तरह अनियमितताओं और उन पर परदा डालने की लंबी परंपरा रही है, उसे देखते हुए किसी सकारात्मक नतीजे की उम्मीद धुंधली ही बनी हुई है। जब तक सरकारी कामकाज में पारदर्शिता लाने का तंत्र विकसित नहीं होगा, तब तक ऐसे घोटालों पर रोक लगाना संभव नहीं है।

कल्पमेधा

हम अपने विवेक की कसौटी पर कस कर ही धर्मग्रंथों और धर्मगुरुओं की बातें मानेंगे तो फिर कोई झगड़ा पैदा नहीं होगा। कोई भी बात महज इसलिए मत मानो कि वह धर्म की किताब में लिखी है।
-विनोबा भावे

हवा के हजार दुश्मन

नीरज कुमार

एक वाहन में एक गैलन यानी करीब पौने चार लीटर ईंधन से नौ किलो कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। औसतन एक कार एक साल में करीब छह टन कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन करती है। सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि दिल्ली में एक करोड़ वाहन पर्यावरण के साथ क्या खिलवाड़ करते हैं।

देश की राजधानी दिल्ली और एनसीआर में वायु प्रदूषण में एकाएक खतरनाक स्तर तक बढ़ोतरी से हर कोई चिंतित है। एक सर्वे में सामने आया है कि दिल्ली के करीब चालीस फीसद लोग प्रदूषण से बचने के लिए कहीं और जाने को तैयार हैं। दिल्ली में हवा को खराब करने में पराली का बड़ा हाथ रहा। नवंबर के पहले हफ्ते में यहां वायु गुणवत्ता सूचकांक यानी एयर क्वालिटी इंडेक्स चार सौ के पार चला गया जो खतरनाक माना जाता है। इसी के चलते दिल्ली में स्वास्थ्य आपातकाल का एलान किया गया। निर्माण कार्यों पर रोक लगा दी गई और स्कूल बंद कर दिए गए।

प्रधानमंत्री कार्यालय ने प्रदूषण के लिए एक समिति गठित की है, जो देश के करीब चालीस शोध संस्थानों के साथ मिल कर दिल्ली-एनसीआर में वायु प्रदूषण के साथ-साथ बंगलुरु, हैदराबाद और पुणे की प्रदूषण संबंधी समस्याओं पर दो हफ्ते में रिपोर्ट दाखिल करेगी। उधर सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश की सरकारों को फटकार लगाई है। फटकार की मुख्य वजह इन राज्यों में पराली जलाना रही। सुप्रीम कोर्ट ने इन सभी राज्यों को माकूल उपाय अपनाने या फिर परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहने की चेतावनी भी दी। मगर पराली ही प्रदूषण की अकेली और सबसे बड़ी वजह नहीं है। अगर दिवाली और उसके आसपास के करीब हफ्ते-दो हफ्ते के वक्त को छोड़ दिया जाए, तो क्या बाकी के ग्यारह महीने प्रदूषण सीमा के भीतर रहता है? इसका जवाब है नहीं।

'दि एनर्जी एंड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट' यानी टेरी के मुताबिक दिल्ली के प्रदूषण में छत्तीस फीसद हिस्सेदारी खुद दिल्ली की है। जबकि चौंतीस फीसद प्रदूषण के लिए एनसीआर के शहर जिम्मेदार हैं। दिल्ली इकोनॉमिक सर्वे के मुताबिक मार्च, 2018 में दिल्ली में वाहनों की कुल संख्या 1.09 करोड़ पहुंच गई। इनमें करीब सत्तर लाख दुपहिया वाहन हैं और करीब पैंतीस लाख कारें और जीप। बाकी ट्रक, तिपहिया और अन्य वाहन हैं। दिल्ली में हर रोज करीब बारह सौ नए वाहन भी रजिस्टर होते हैं। टेरी के अध्ययन के मुताबिक दिल्ली में अट्ठाईस प्रतिशत पीएम 2.5 प्रदूषण इन्हीं वाहनों से होता है। इसके अलावा जेनरेटर, ईंट के भट्ठों, स्टोन क्रशर और उद्योगों से तीस प्रतिशत, निर्माण कार्यों की वजह से उड़ने वाली धूल से तीन प्रतिशत प्रदूषण होता है। यही नहीं, दिल्ली के आवासीय इलाकों की भी प्रदूषण में करीब दस फीसद की हिस्सेदारी है।

एक वाहन में एक गैलन यानी करीब पौने चार लीटर ईंधन से नौ किलो कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। औसतन एक कार एक साल में करीब छह टन कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन करती है। सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि दिल्ली में एक करोड़ वाहन पर्यावरण के साथ क्या खिलवाड़ करते हैं। यह सही है कि सभी एक करोड़ वाहन हर दिन सड़क पर नहीं होते, लेकिन इस बात का कोई आंकड़ा नहीं है कि हर रोज दिल्ली की सड़कों पर कितने वाहन होते हैं। फिर भी मान लिया जाए कि एक तिहाई यानी तैंतीस-पैंतीस लाख वाहन ही रोजाना सड़क पर होते हैं, तो भी नतीजा कोई राहत देने वाला नहीं होता।

इन सबके अलावा दिल्ली-एनसीआर की आबोहवा खराब करने में बड़ा हाथ एयर कंडीशनरों का है। एयर कंडीशनर से निकलने वाला क्लोरोफ्लोरोकार्बन हवा को सीधे तौर पर तो प्रदूषित नहीं करता, लेकिन यह वायुमंडल में ओजोन परत को भारी नुकसान पहुंचाता और अल्ट्रा वायलेट विकिरण बढ़ाता है। एयरकंडीशनर के लिए ज्यादा बिजली की जरूरत होती है जो आज भी ज्यादातर कोयले से पैदा की जाती है। कोयले को जलाने पर नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड और कार्बन डाइ ऑक्साइड जैसी नुकसानदेह गैसें पैदा होती हैं। इसको इस तरह समझ सकते हैं कि डेढ़ टन का एक एसी अगर चौबीस घंटे चले तो करीब छत्तीस से चालीस वॉट बिजली खाता है, जबकि एक सामान्य पंखा केवल 1.8 वॉट और नई तकनीक वाला बीएलडीसी पंखा एक वॉट से भी कम बिजली की खपत करता है। इसको ऊर्जा के उत्पादन में इस्तेमाल ईंधन के हिसाब से देखें तो डेढ़ टन के एक एसी के लिए पांच किलो कोयले की खपत होगी, जिससे करीब सात किलो कार्बन डाई ऑक्साइड निकलेगी। सामान्य पंखे के लिए कोयले की मात्रा दो सौ ग्राम और कार्बन डाई ऑक्साइड केवल तीन सौ ग्राम निकलेगी। बीएलडीसी पंखे के लिए कोयले की मात्रा केवल नब्बे ग्राम और कार्बन डाई ऑक्साइड केवल सौ ग्राम निकलेगी। 2011 की मर्दमशुमारी के मुताबिक दिल्ली में लगभग 29.5 प्रतिशत घरों में एयरकंडीशनर लगे थे। करीब छब्बीस फीसद के साथ दूसरे नंबर पर चंडीगढ़ और फिर तीसरे नंबर पर करीब उन्नीस प्रतिशत के साथ पंजाब और गोवा हैं। जाहिर है, बीते नौ सालों में दिल्ली में यह आंकड़ा और बढ़ा होगा।

इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि एयर कंडीशनर की एनर्जी एफिशियंसी के मामले में भारत विश्व के कई देशों की तुलना में पिछड़ा हुआ है। दिल्ली में ग्लोबल कूलिंग इनोवेशन समिट के दौरान जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक 2016 में भारत में करीब 2.63 करोड़ रूम एयरकंडीशनर थे, जो 2050 तक बढ़ कर एक अरब से ज्यादा हो जाएंगे। यानी अड़तीस गुना बढ़ोतरी। यही नहीं, प्रति व्यक्ति स्पेस कूलिंग खपत 69 किलोवॉट प्रति घंटे से बढ़ कर 1140 किलोवॉट प्रतिघंटा हो जाएगी।

ऐसे में जरूरत लगातार हर रोज प्रदूषण को कम करने के उपाय अपनाने की है, न कि किसी खास वक्त पर कुछ खास उपाय अपनाने की। इसमें गाड़ियों की संख्या और एयरकंडीशनर पर लगाम लगाना भी शामिल है। एयरकंडीशनर को लेकर सरकारी क्षेत्र की एनर्जी एफिशियंसी सर्विसेज लिमिटेड (ईईएसएल) ने हाल ही में कम खपत और कम हानिकारक गैस उत्सर्जित करने वाला एयरकंडीशनर बनाया है। कंपनी का दावा है कि इसके पचास हजार एयरकंडीशनर सालाना 14.55 करोड़ किलोवाट बिजली की बचत करेंगे और इससे वायुमंडल में 1.2 लाख टन कार्बन डाईऑक्साइड कम होगी। ऐसी और कोशिशों को प्रोत्साहित करने की जरूरत है।

चीन की राजधानी बेजिंग में प्रदूषण की रोकथाम के लिए सीमित संख्या में वाहनों की बिक्री का नियम लागू है। भारत में भी वाहनों की बिक्री पर सख्ती की जरूरत है। सम-विषम जैसे उपाय कितने कारगर हैं, इसके भरोसेमंद आंकड़ों की अभी दरकार है, लेकिन तार्किक दृष्टि से देखा जाए तो अगर सड़कों पर वाहन कम होंगे, तो प्रदूषण भी कम ही होगा। इसे लंबे समय तक जारी रखा जाए, तो अनुकूल नतीजे आ सकते हैं। इसके अलावा हफ्ते में अलग-अलग दिन कुछ खास तरह के वाहनों के चलने पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। सिंगापुर में सोमवार से शुक्रवार तक एसयूवी चलाने पर रोक है। अगर इस दौरान एसयूवी चलानी है तो पहले उसके लिए फीस भर कर रसीद लेनी होती है।

हमारे यहां विरोध का एक स्वरूप वर्ग विभेद से भी जुड़ा दिख रहा है। क्या प्रदूषण के कारकों में उन्हीं को निशाना बनाया जा रहा है, जो प्रतिरोध करने की हालत में नहीं हैं? मसलन, किसान या छोटे उद्योग चलाने वाले? दिल्ली में एसी के इस्तेमाल पर लगाम के लिए तो आज तक कोई आवाज नहीं उठाई गई। कारों को लेकर सम-विषम योजना के एलान के साथ ही विरोध शुरू हो जाता है। यहां तक कि अदालत भी इस पर सवाल उठा देती है। मगर पराली का मौसम आते ही चारों ओर से किसानों पर सख्ती और जुर्माने की मांग होने लगती है। और यह उसी तबके से होती है, जो ईंधन पीने वाली गाड़ियों से दिल्ली एनसीआर की सड़कों पर पूरे साल प्रदूषण फैलाने का सबसे बड़ा गुनहगार है।

गांव की खिड़की

रमेश चंद मीणा

कुछ हकीकत अनुभव से ही सामने आ पाती है। अनुभव ही है जो आदमी को मुकम्मल बनाता है। हालांकि यह भी जिंदगी भर जारी रहने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा भले ही स्कूल-कॉलेजों में मिलती है, लेकिन अनुभव दुनिया देखने-सुनने और वक्त से टकराने के बाद ही मिलता है। जिंदगी के कुछ पूर्वाग्रह धीरे-धीरे साफ होते हैं। इसमें पुस्तकें बहुत सहायक नहीं हुआ करतीं। ऐसा ही एक सिद्धांत-सा बन गया है कि 'भारत गांवों में बसता है।' इससे कौन इनकार कर सकता है! यह ध्रुव सत्य छोटी-बड़ी, नई-पुरानी पुस्तकों में पढ़ा जा सकता है। नए-पुराने लोगों से सुना जा सकता है। नेता भी अक्सर इस बात को कहते हुए मिल जाते हैं। यह लगभग मानी हुई बात है कि गांव शहर की तुलना में अधिक मानवीय, अधिक संवेदनशील, अधिक भावुक और भावनाशील होते हैं। इंसानियत अगर देखनी है तो शहर में नहीं, गांव जाकर देखी जा सकती है। इसलिए भारत शहरों में नहीं, गांवों में बसा है। गांवों में अधिकतर किसान ही हैं, क्योंकि भारत की सत्तर फीसद आबादी किसान रहे हैं। भले ही यह आंकड़ा अब तेजी से घट रहा है।

मैं बीसवीं सदी के सातवें दशक में एक किसान गांव में ही जन्मा, पला-बढ़ा। बाद में शिक्षा प्राप्त करने के लिए गांव छोड़ कर शहर आया और जीवन की व्यस्तताओं के चलते इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में एक मझोले शहर में रह रहा हूं। प्रदेश और देश की राजधानी में शिक्षा पाने के दौरान रहना और समझना हुआ, तब से लेकर आज तक यही सुनने को मिलता रहा कि भारत देखना हो तो शहर में नहीं, गांवों में जाओ क्योंकि भाईचारा अगर बचा है तो गांवों में। लेकिन क्या भाईचारा-मेलजोल, मिलनसारिता गावों में मिलती है! हकीकत में देखा जाए और कुछ पर्दे उठा कर झांका जाएं तो आज का 'महाभारत' अगर कहीं हो रहा है तो गावों में ही। प्रथम दृष्ट्या यह गलत लग सकता है, कुछ को बुरा भी, लेकिन थोड़ा करीब जाकर देखने पर यह आम दिखता है।

दुनिया मेरे आगे

बेशक 'महाभारत' एक परिवार में घटित हुआ और जमीन को लेकर ही हुआ माना गया। आज इंच भर जमीन न देने को लेकर गांवों में बड़ी लड़ाइयां हो जाती हैं। जमीन तो यों भी गांवों में भावुकता का मामला रहा है, लेकिन जब से जमीन हासिल करने वाले अधिक हो चले हैं, तब से जमीन का बाजार भाव आसमान छू रहा है। बढ़ती कीमतों ने नई पीढ़ी हो या पुरानी, सभी की निगाह जमीन पर लगा दी है। मेरे गांव में रास्ते कभी इतने चौड़े होते थे कि वहां बैलगाड़ी चलती थी। अब भारत के किसी भी गांव में चले जाइए आपको मोहल्ले से लेकर एक खेत से दूसरे खेत में पहुंचने के लिए रास्ते नहीं मिल सकते हैं। खेत, मेड़ से हुआ करते हैं, पर आज मेड़ की परिभाषा बदल दी गई है। मेड़ के नाम पर एक पतली-सी लकीर बची है, जिससे ट्रैक्टर तो क्या, इंसान भी संतुलन बनाने पर ही निकल पाता है। ऐसे में एक-एक इंच जमीन के लिए आए दिन लड़ाई छिड़ जाती है।

किसान गांव में रहने भर से नहीं, खेती करने से होते हैं। दबंग और धनी किसानों को छोड़ दीजिए। एक आम और कमजोर किसान के पास अगर खेत हो भी तो वह अपने खेत तक कैसे पहुंचे? बीच में कई दबंगों के खेत हों या ऐसे भाई का, जिसका मकसद दूसरे भाई को परेशान करना हो, तो वह कभी भी अपने खेत से पार होने से मना कर सकता है। आए दिन सुनने को मिलता है कि किसान की जान चली गई। किसान क्यों जहर खाकर अपनी जान दे रहा है? क्यों खेत बेचने पर मजबूर हो रहा है? इसके अलावा, जमीन के लिए एक भाई जो कभी अपने पिता से लड़ता था, फिर अपने बड़े भाई से लड़ा और आज वह अपने भाई के बेटों और पोतों से भी लड़ रहा हो तो 'महाभारत' और कैसा होता है? किसे रिश्ता कहेंगे और कैसे कहेंगे कि भारत शहर में नहीं, गांवों में बसता है और भाईचारा शहर में नहीं, गांवों में है!

गांव में हर समय रचा जा रहा 'महाभारत' कोई नहीं लिखने वाला। हमारे-आपके जैसे साधारण लोग जो लिखने-पढ़ने में रुचि रखते हैं, वही इन सबको दर्ज करेंगे। सच यह है कि गांवों को अब नए सिरे देखने की जरूरत है। रिश्तों से लेकर पड़ोसियों और दूसरे गांव वालों के बीच जमीन तक के विवाद जो शक्ल ले रहे हैं, उसमें गांव को लेकर मुग्ध होना मुश्किल है। पहले भी गांव 'समरथ को नहीं दोष गुसाईं' की छवि के साथ रहे हैं। अब वह नए रूप में सामने आ रहा है। सामाजिक सवाल फिर से तकलीफदेह समीकरण रच रहे हैं। ऐसे में कमजोर आदमी गांव, पंचायत, अदालत की चक्की में पिसते हुए खेत बेच कर या छोड़ कर गांव से शहर कूच कर जाता है और फिर यह सवाल उठता है कि आखिर लोग गांव छोड़ कर शहर क्यों आ रहे हैं! मेरा कहना सिर्फ इतना है कि गांवों को लेकर मुग्ध होने के साथ-साथ वहां के कुछ कड़वे सवालों से भी दो-चार हो लिया जाए!

विकास और संस्कृति

हमारे देश में समांतर संघर्ष की कहानियां चलती रहती हैं। तकरीबन दो माह पूर्व की घटना है जब आदिवासियों ने दंतेवाड़ा में सरकार के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया क्योंकि उस पहाड़ पर खुदाई शुरू कर दी गई जहां उनके ग्राम देवता विराजमान हैं और जिनकी इष्ट देव के रूप में पूजा की जाती है। बैलाडीला इलाके की तेरह नंबर की इस पहाड़ी पर बहुत उत्तम दर्जे का लौह अयस्क है। असल में ऐसे टकराव भावनात्मक बनाम आर्थिक लाभ को होते हैं। इस परिदृश्य में विकासशील भारत को विकास की राह पर चलना है, लेकिन विकास अगर जनजाति संस्कृति को क्षति पहुंचाते हुए आगे बढ़ता है तो न संस्कृति रहेगी न विकास। हमारी जनजातियों की भूमि अनेक प्रकार के खनिजों की भी भूमि है और यह द्वंद्व तब से शुरू हुआ है, जब से विकास के नाम पर जल, जंगल और जमीन का बंटवारा-सौदा होने लगा।

बहरहाल, सरकार व स्थानीय लोगों को इसका समाधान खोजना होगा। ऐसे कई उदाहरण स्थानीय और वैश्विक रूप में उपलब्ध हैं जहां विकास भी अपनी राह पर चल पड़ा और संस्कृति व प्रकृति भी अक्षुण्ण रही। अंदरूनी इलाकों, जंगलों व अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में लगाए जाने वाले उद्योगों में स्थानीय निवासियों को रोजगार में प्राथमिकता देकर विकास और संस्कृति के बीच तालमेल बिठाया जा सकता है। उद्योग लाभांश का हिस्सा तथा खनिज रॉयल्टी के धन का उपयोग स्थानीय लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार पर खर्च करके भी संघर्ष को कम किया जा सकता है।

शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए जो उनका सर्वांगीण विकास करे। कोई भी विकास उनकी संस्कृति पर आक्रमण न करके उसका संरक्षण करे। रोजगार ऐसा हो जो उन्हें विस्थापित करने की बजाय उन्हें वनों के और करीब ले जाए। सरकार से आदेश आने की बजाय स्थानीय प्रशासन स्थानीय लोगों की सहभागिता से कार्ययोजनाएं बनाए। उद्योग अगर स्थानीय संसाधनों का उपयोग करें तो लाभ का पर्याप्त हिस्सा वहां के विकास के लिए खर्च करें। सतत विकास लक्ष्य की अवधारणा भी तो यही है। आदिवासी युवागृहों को विकृत किए बिना सर्वसुविधा युक्त आधुनिक हॉस्टलों में क्यों नहीं बदला जा सकता?

नवाचार और नवोन्मेष के विभिन्न पहलू हमारी संस्कृति पर भी बराबर लागू होते हैं। बौद्धिक आलस्य और वैचारिक संकीर्णता को त्याग कर, जनजातियों को हाशिये पर न ढकेल कर उन्हें मुख्यधारा में लाना होगा, तभी विकास भी न्यायसंगत होगा और सांस्कृतिक संरक्षण भी।

● *जितेंद्र साहू, शहडोल, मध्यप्रदेश*

प्रायोजित विवाद

भारत और नेपाल के बीच कोई सीमा विवाद भी है, इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी। अब जब भारत का नया नक्शा प्रकाशित हुआ तो नेपाल हमारे उत्तराखंड के कालापानी क्षेत्रों को अपना बतला रहा है। हम इसे पिथौरागढ़ का हिस्सा मानते हैं। नेपाल अपना दार्चुला जिला बतला रहा है। दरअसल, यह विवाद प्रायोजित लग रहा है। चीन का प्रभाव नेपाल में लगातार बढ़ रहा है। उसके कई स्कूलों में चीनी भाषा मैंडरिन पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया है। चीन नेपाल में भारी मात्रा में पूंजी निवेश भी कर रहा है। उसे कर्ज दे रहा है। नेपाल ठहरा गरीब देश। कर्ज तो वापस कर नहीं पाएगा। बदले में चीन का हिस्सा बनना नेपाल की अंतिम नियति रह जाएगी। इसलिए नेपाल-भारत सीमा विवाद के पीछे काठमांडौ नहीं बल्कि बीजिंग का हाथ है।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

तथ्यों के साथ

जिस राफेल को लेकर एक राष्ट्रीय पार्टी के वरिष्ठ नेता ने लोकसभा चुनाव और उसी समय कुछ राज्यों में हुए विधानसभा चुनावों में लगातार कुप्रचार का अभियान चला रखा था और एक नया नारा गढ़ दिया था, 'चौकीदार चोर है' उसे उच्चतम न्यायालय ने पूरी तरह खारिज कर दिया। यहां बात इस एक विपक्षी नेता की नहीं है, सत्ता पक्ष और विपक्ष के भी सभी नेताओं से आग्रह है कि चुनावी राजनीति में कभी भी गलत तथ्यों के साथ न उतरें। हो सकता है इससे मतदाता तो न प्रभावित हों लेकिन भविष्य में उनकी खुद की छवि प्रभावित हो सकती है।

● *रमेश माहेश्वरी, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश*

स्कूलबंदी क्यों

दिल्ली में कोहरा, गर्मी, ठंड या प्रदूषण बढ़ जाने और बारिश हो जाने पर झट स्कूल बंद करा दिए जाते हैं। यह पूर्णतया अनुचित है। स्कूल बंद होने से करोड़ों परिवारों की दिनचर्या बिगड़ जाती है। छात्र कोई कार्य न होने पर सारा दिन या कई दिन घर में उदास हो जाते हैं। कनाडा में शिशु भारी हिमपात में भी स्कूल जाते हैं। स्कूल खुले होने से छात्र को हर मौसम का अभ्यास रहता है। इसके मद्देनजर स्कूल हर मौसम में हर हालत में खुले होने चाहिए। मौसम विपरीत लगने पर जो छात्र चाहे वह न आए। दिल्ली सरकार के अनुसार दिल्ली में सड़कें, स्कूल भवन आदि बेहतर हैं। बेहतर सड़कों, बेहतर स्कूल भवनों के बावजूद स्कूल बंद रखना बेहतर नहीं है।

● *जीवन मित्तल, मोती नगर, नई दिल्ली*

गंभीर कब

मौसमी उतार-चढ़ाव और आंशिक राहत के बाद दिल्ली-एनसीआर में पिछले कुछ दिनों से वायु प्रदूषण फिर गंभीर स्तर पर पहुंच गया है। पीएम 2.5 और 10 की मात्रा में खासा इजाफा देखने को मिला। हवा में पराली के धुएं की मात्रा बढ़ने से वायु गुणवत्ता सूचकांक 500 के पार यानी अत्यंत गंभीर स्थिति में पहुंच गया। पराली के धुएं के साथ हवा की बदली दिशा और जम्मू कश्मीर में सक्रिय पश्चिमी विक्षोभ के कारण देश की राजधानी फिर गैस चैंबर बन गई है। नवंबर में यह दूसरा मौका है जब ऐसे हालात बने हैं।

पराली के धुएं के चलते दिल्ली-एनसीआर में आसमान पर 'स्मॉग' की गहरी परत छाई हुई है। इसके चलते दिन के समय भी दृश्यता प्रभावित हुई है। अनुमान लगाया जा रहा है कि इससे जल्द ही राहत मिलने की कोई उम्मीद नहीं है। इस सबके बीच सरकार हाथ पर हाथ रखे बैठी हुई है महज ऑड-इवन के भरोसे। आखिर इस गंभीर समस्या के स्थायी हल के लिए सरकार कब गंभीर होगी?

● *नीतीश कुमार पाठक, आश्रम, नई दिल्ली*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com